क्या शिक्षा शांति में सहायक हो सकती है?

भाग-II

कृष्ण कुमार
अनुवाद : लतिका गुप्ता

खण्ड-2 : शिक्षा एवं भारत-पाक शत्रुता

कई देशों में, सामाजिक संस्था के रूप में धर्म और उसका इतिहास आधुनिक राष्ट्रवाद के इतिहास से गुंथा हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यही कारण है कि हाल के वर्षों में राष्ट्र-राज्यों में शत्रुता और युद्ध जैसे संबंध बन गए हैं। भारत और पाकिस्तान का किस्सा इसी तरह का है हांलाकि ऐसे कई कारक हैं जिनके कारण उनकी पारस्परिक शत्रुता अनोखी प्रतीत होती है। साथ ही, ऐसे भी कारक हैं जिनके कारण इस शत्रुता भरे रिश्ते को प्रांतीय होड़ का आम चरित्र भी मिलता है। शिक्षा के नियोजकों, खासकर पाठ्यचर्या निर्माताओं के लिए भारत-पाक शत्रुता से एक महत्वपूर्ण सबक निकलता है कि शिक्षा को समाज के वृहत परिवेश से अलग करके नहीं देख सकते। दुनिया के किसी भी हिस्से में उन पाठ्यचर्या निर्माताओं के लिए इस सबक का मूल्य है जो शांति को लेकर चिंतनशील रहते हैं। अगर शांति फैलाने के लिए शिक्षा का पुनर्विन्यास होना है तो यह पहचानने की जरूरत है कि अतीत के बारे में ज्ञान की जमी हुई परतें कितने गहरे जा कर स्कूली सीखने या स्कूली अधिगम को प्रभावित करती हैं। यह सच है कि भारत-पाक समस्या को किसी एक या साधारण धुरी पर नहीं टिकाया जा सकता, लेकिन धर्म और बढ़ते राष्ट्रवाद के संबंध में निश्चय ही इस समस्या का बोधक मूल्य है। और यह केवल भारत-पाक विभाजन के कारण नहीं है जैसा कि कई लोग मानते हैं। अगर जाते हुए अंग्रजों ने अखंडित भारत का 1947 में धार्मिक आधार पर विभाजन न किया होता तो भी इस क्षेत्र की दो मुख्य धार्मिक अस्मिताओं के बीच धार्मिक कलह एक जीवंत संवृत्ति होती। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यह हो ही चुका था। अत्याधिक प्रचलित मत कि औपनिवेशिक शासकों ने अपने हितों के लिए हिन्दु-मुसलमान अलगाव को भड़काया सत्य ही है, लेकिन अधूरा। आधुनिकता का आगमन और राजनीतिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं में उसकी अभिव्यक्ति में बाकी का सत्य है।

औपनिवेशिक प्राधिकारी ने ऐसी धुरी दी जिस पर दोनों ही धार्मिक अस्मिताएं जनगणना, अदालत, स्कूल एवं चुनाव जैसी आधुनिक संस्थाओं के सापेक्ष जूझने लगीं (कून, 1987)। धार्मिक अस्मिता एक ऐसा साधन बनी जिसे औपनिवेशिक एवं स्थानीय, दोनों ही तरह के संभ्रांत लोगों, ने आर्थिक एवं राजनीतिक मौकों के उभरते ढांचे में सौदे के लिए इस्तेमाल किया। जिस रूप में धार्मिक अस्मिता इतिहास, किवदन्ती तथा पौराणिक कथाओं में तनावयुक्त थी उन्होंने औपनिवेशिक सत्ता संरचना से भिड़ने के लिए उसका उसी रूप में इस्तेमाल किया। समय के साथ-साथ यही भिड़ंत पूरी राजनीति बन गई (नायर, 2010)। धर्म का राजनीतिक औजार के रूप में इस्तेमाल होने के विरोध में प्रतिकूल शक्तियां भी उभरीं, लेकिन प्रतियोगी दावों से निपटने के लिए औपनिवेशिक प्राधिकारी के हाथ में धर्म एक महत्वपूर्ण मूंठ की तरह बना रहा।

विभाजन के चलते भारत और पाकिस्तान दो भिन्न हस्तियां बन गए जिनके अपने राज्य थे जो राष्ट्रीयता का उत्साह बयान करते थे। बस अलग हुए नहीं कि दोनों हस्तियों ने पारस्परिक प्रतिक्रियात्मकता को ओढ लिया (कुमार, 2007)। दोनों हस्तियों के बीच बहने वाली नकारात्मक ऊर्जा को अगर कोई समझने का प्रयास करेगा तो शायद वह मानेगा कि दोनों की अंदरुनी दुनिया बिल्कुल अलग होगी। दोनों राष्ट्र जैसी आत्म-छवियां पेश करते हैं वे वाकई अलग दिखती हैं। भारत एक ऐसे धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र-राज्य की आत्म-छवि पेश करता है जिसमें भिन्न धर्मों के लोग संवैधानिक रूप से मिले बराबर अधिकारों के साथ रहते हैं। दूसरी तरफ पाकिस्तान ऐसे राष्ट्र-राज्य की आत्म-छवि पेश करता है जो इस्लाम के आदर्शों पर बना, जहां जीवन के हर पहलू में इस्लाम के मूल्यों का पालन होता है जिसमें राजनीतिक एवं नागरिक प्रशासन शामिल है। इन बिल्कुल भिन्न आधिकारिक आत्म-छवियों का आमना-सामना वैश्विक पटल पर चलने वाले प्रतीकात्मक नाटकों के कभी न बदलने वाले पात्रों के रूप में होता है। नाटक के जिस कथानक में दोनों राष्ट्र पात्र अदा करते हैं वह ऐतिहासिक है जिसके कारण विभाजन पूर्व अतीत में हैं और जो एक परिचित, तार्किक एवं सुसंगत भविष्य की तरफ बढ़ रहा है। हम इसको राष्ट्रवाद की दो कहानियों के रूप में देख सकते हैं, जो नैतिक वरिष्ठता के दावे के लिए चल रही विस्तृत प्रतियोगिता में असंगति का स्रोत बन स्रावित हो रही है।

नैतिक वरिष्ठता के दावे का आधार ही उन संदेशों का केन्द्र है जो दोनों देशों के बच्चों को दिए जाते हैं। आजादी के संघर्ष के इतिहास की भारतीय एवं पाकिस्तानी, दोनों ही कहानियों में बच्चों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि राष्ट्र-राज्यों के रूप में दोनों के पास असंगत तरीके से अलग होने का सैद्धांतिक कारण है। कहानियों का उद्देश्य यह समझा पाने की जरूरत में निहित है कि आखिर विभाजन हुआ ही क्यों। एक घटना की तरह और औपनिवेशिक शासन से आजादी पाने के निर्धारक क्षण की तरह अगर दोनों कहानियों में दो देशों के बीच समानता के उदाहरण हैं ही तो विभाजन का पर्याप्त औचित्य कैसे मिला? यह संरचनात्मक अनिवार्यता मजबूर करती है कि दोनों कहानियां यथासंभव अपसारी हों। चूंकि दोनों देशों का एक ही आम अतीत है, इसलिए पाठ्‌यपुस्तक लिखने वाले इतिहासकार उस अतीत की रचना अलग तरीके से करें। वे मुख्य घटनाओं को इस रोशनी में प्रस्तुत करें कि वह उस से बिल्कुल अलग हो जाए जैसा वह दूसरे राष्ट्र को दिखता है।

कहानियों में भिन्नता महान नेताओं एवं नायकों के चरित्र-चित्रण की मदद से भी की जाती है। उनके जीवन के बड़े एवं प्रभावशाली चित्रण से कहानियों में शानदार भावनात्मक प्रभाव आता है (कुमार, 2001)। बच्चों-लक्षित पाठकों-से उम्मीद होती है कि वे उन नेताओं एवं नायकों से तादात्म्य स्थापित करेंगे ताकि उन कारणों में विश्वास जागे जिनके कारण वे इतने विशाल बने। भारत के नायक महात्मा गांधी हैं और पाकिस्तान के नायक हैं जिन्ना। पाठों में से उनका व्यक्तित्व ऐसे उभर के आता है जैसे कोई विशालकाय बुत हो जो उन राष्ट्रों का मानवीकरण सा कर रहे हों जिनको उन्होंने प्रतीकात्मक रूप से जन्म दिया। उनके व्यक्तित्वों एवं जीवन-शैली में अंतर उस सूचक की तरह काम करते हैं जो दोनों राष्ट्रों के बीच अभीष्ट विचारधारा को दिखाता है। यह कवायद पारस्परिक निंदा से पूरी होती है जो भारतीय कहानी में जिन्ना की होती है और पाकिस्तानी कहानी में गांधी की।

दोनों कहानियों में राष्ट्र-निर्माण की परियोजना अवतीर्ण होती है जिसमें गर्व एवं हर्ष के साथ-साथ दुख एवं विषाद के अंश भी होते हैं। भारत के मामले में गर्व एवं उल्लास के अंश औपनिवेशिक शासक एवं उसके मनसूबों पर विजय पाने से पैदा होते हैं। पाकिस्तान के मामले में गर्व एवं हर्ष दोनों ही उसके जन्म से जुड़े हैं जो कि उसको रोकने के कई आतताई प्रयासों के बावजूद भी हुआ। भारत के मामले में विशाद का अंश है कि विभाजन हो गया और पाकिस्तान के माामले में यह कि विभाजन के दौरान क्षेत्रीय न्याय नहीं हुआ।

ये विषम रचनाएं अनिवार्य रूप से मान कर चलती हैं कि दोनों राष्ट्र-राज्य न केवल भिन्न सिद्धांतों पर आधारित हैं; उनके अंदरुनी संसार भी अलग हैं जिनमें जनांकिक एवं सांस्कृतिक वास्तविकताएं शामिल हैं। हम अब इस मान्यता को परख कर देखते हैं। भारतीय कहानी-जो कि सारी राज्य-स्तर की पाठ्यपुस्तकों में अनिवार्यतः हूबहू एक जैसी नहीं होती (कुमार, 2017)- उसकी रूपरेखा ऐसे राष्ट्र को प्रस्तुत करने के लिए बनाई जाती है जिसमें लोगों का धार्मिक जीवन उनके नागरिक जीवन के अधीन रहता है। शासनकला के एक आदर्श के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद और राष्ट्रीयता के प्रतीकात्मक बयान के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद बिल्कुल अलग चीज़ है। शासनकला के संदर्भ में वह भारत को एक उपयोगी साधन देता है जिससे जनांकिक एवं सांस्कृतिक रूप से विविध वातावरण में राज्य को अपने अनेक प्रकार्यों में मदद मिलती है। हालांकि, राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद एक अपर्याप्त मुहावरा रहा है जहां तक कि वह आम जिंदगी में धर्म के महत्व को नकारने के लिए उपयुक्त माना जाता रहा है। इसी कारण से राज्य-विचारधारा के रूप में 'धर्मनिरपेक्षतावाद' की अलग-अलग तरह से विवेचना हो जाती है (केसावन, 2001) और धार्मिक पुनरुत्थानवादी राजनीति को समर्थन जुटाने का मौका मिलता रहता है। भारत और पाकिस्तान में फर्क करने के लिए एक भाषाई औजार के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद की यांत्रिकता काफी कमजोर साबित हुई है और समय के साथ उसकी शिकस्त के निशान ज्यादा दिखने लगे हैं।

राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में धर्मनिरपेक्षतावाद के भारत के बरताव को लेकर कोई पूछ सकता हैः क्या भारत के पास कोई विकल्प है? दूसरे शब्दों में भारत से धर्मनिरपेक्षतावाद के मुहावरे को छोड़ने की उम्मीद नहीं की जा सकती क्योंकि उससे तो यह औपनिवेशिक मान्यता स्वीकार करनी पड़ेगी कि विभाजन धार्मिक आधारों पर हुआ था और उसका उद्देश्य था एक मुसलमान पाकिस्तान को हिन्दु भारत से अलग करना। इस औपनिवेशिक विमर्श में निश्चय ही गंभीर समस्याएं हैं और उसका सत्यता मान बहुत ही कम है। वो जो भी हो भारत की अपने इतिहास की कहानी को हिन्दू धार्मिकता नकारने की जरूरत नहीं है।

'प्रचलित हिन्दुत्व' का अक्सर इस्तेमाल किया जाता है कर्मकाण्ड और मिथकों को आध्यात्मिक हिन्दुत्व से भिन्न ठहराने के लिए। यह भिन्नता एक और उदाहरण है उस बेचैनी का जो धर्मनिरपेक्षतावाद के विचारधारात्मक उपयोग में निहित है। धर्मनिरपेक्ष मत धार्मिकता को आम जीवन के महत्वपूर्ण पहलू के रूप में स्वीकारने से झिझकते हैं। और इसी झिझक से धार्मिक पुनरुत्थानवादी राजनीति मजबूत होती है जिसका जोर हिन्दू-पन पर होता है।

पाकिस्तान ने जो संकट झेला है वह कोई इतना अलग भी नहीं है। उसके इस्लाम को राष्ट्रीय पंथ के रूप में अपनाने से इस्लाम के विविध रूप नकार दिए गए जो कि लोगों के बीच उभर कर प्रचलित हो चुके थे। एक बार जब नवनिर्मित राष्ट्र की एकल, राज्य-प्रमाणित अस्मिता के रूप में इस्लाम घोषित हुआ तो स्कूलों में बच्चों के दिमाग में आधिकारिक कहानी ठूंसने के लिए सजीव इस्लाम के विविध विश्वासों, मिथकों, और कर्मकाण्डों की तिलांजली दे दी गई।

इस कारण पारस्परिक रूढ़िबद्धता को बढ़ावा मिला। पाकिस्तानी आधिकारिक कहानी में और उसको सही ठहराने वाले विमर्श में भारत के धर्मनिरपेक्ष राज्य होने के दावे को कपटी करार दिया जाता है। पाकिस्तान के लिए भारत साफ साफ हिन्दू है और हिन्दुत्व एक काण्डों और विश्वासों का दृढ समुच्चय है जिनमें से एक है कि इस्लाम हिन्दुत्व के लिए एक निंदनीय खतरा है। इस विश्वास से भारत में मुसलमानों और पाकिस्तान के प्रति आम नफरत के प्रक्षेपण को समर्थन मिलता है। जैसे कि रूढ़िवादी धारणाओं में सूक्ष्मता से सोचने या फर्क करने की कोई संभावना नहीं होती, भारत की पाकिस्तानी धारणा में इस बात की कोई जगह नहीं होती कि भारतीयों के मन में विविध विचार और नज़रिए हो सकते हैं।

भारत की तरफ देखें तो, पाकिस्तान के बारे में रूढ़िवादी धारणा है कि वह देश अखण्ड इस्लाम का सूचक है जो किसी भी और धर्म को श्रद्धा के लायक नहीं मानता, हिन्दुत्व को तो बिल्कुल ही नहीं। यह विचार कि सभी मुसलमान एक हैं और सभी पाकिस्तानी भी, कि वे सब के सब अपने इस विश्वास में एकमत हैं कि पाकिस्तान को एक आज़ाद देश के रूप में बने रहने की जरूरत नहीं है, इस रूढ़िवादी धारणा के केन्द्र में है। यहां भी मूल भावना नफरत ही है जिसे भौगोलिक रूप से अपरिहार्य पड़ोसी से सतर्कता से पेश आने के लिए निर्देश के रूप में बनाए रखना है। दोनों राष्ट्र जिन रूढ़िवादी धारणाओं को बरकरार रखते हैं वे सोच के ढांचों का काम करती हैं जिनको इतिहास की चुनिंदा घटनाओं से बल मिलता है। भारत के मामले में मुसलमानों की आक्रांता एवं उपद्रवी छवि मध्यकालीन अतीत में उपलब्ध है। पाकिस्तान के लिए, चंट हिन्दू की छवि आज़ादी के संघर्ष में उपलब्ध है, खासकर विभाजन के विचार के प्रति दिखाए गए विरोध में जो कि पाकिस्तान के जन्म के लिए अनिवार्य था।

भाग-3 : इतरीकरण या अन्यता बोध की प्रक्रिया

भारत-पाक किस्सा दिखाता है कि राष्ट्रवादी खांचे में सामूहिक अस्मिता को फंसाए रखने में शिक्षा की क्या भूमिका हो सकती है। इस किस्से का एक अध्ययन यह भी इशारा करता है कि दानों राष्ट्र-राज्यों के बीच व्याप्त नफरत के रिश्तों की कितनी जटिल परतें हैं। यह जरूर बहस का मुद्दा हो सकता है कि यह किस्सा हमें किस हद तक इस बात का सामान्य नियम बनाने में मदद करता है कि शिक्षा नफरत बनाए रखने में कारगर साबित होती है। लेकिन, यह तो दिखाता ही है कि शिक्षा में इतिहास का महत्व होता है और बचपन में इतिहास के अध्ययन के लिए संस्कृति एवं अन्य समाजीकरण के स्रोत कौनसी चुनौतियां पेश करते हैं। इज़राइल-फिलिस्तीन संबंधों जैसे किस्से का भी ऐसा ही विश्लेषण किया जाना चाहिए जिसमें व्यापक माहौल के संदर्भ में स्कूली इतिहास के ज्ञान को जांचा जाए। स्कूल में इतिहास की पढ़ाई घर पर मिल चुकी सीख की अनदेखी करती है। पाठ्यचर्या निर्माता विरले ही कबूलते हैं कि बच्चों के समाजीकरण में निहित ज्ञान और सीख स्कूली ज्ञान के लिए पृष्ठभूमि का काम करते हैं। स्कूली सीख परिवार एवं समुदाय से आत्मसात व्यवहारों, दृष्टिकोणों और मूल्यों को अलग से संबोधित नहीं करते। धर्म के आधार पर रूढ़िवादी धारणा बनाना इस ज्ञान और सीख का ही अंग है।

धार्मिक समाजीकरण पर सीमित शोध है पर वह उस भूमिका पर रोशनी डालता है जो परिवार एवं समुदाय बचपन से ही एक सामुहिक एवं धार्मिक स्व-पहचान विकसित करने में निभाते हैं(सिन्हा, 1981)। कक्कर (1998) ने हिन्दु-मुस्लिम संबंधों पर हैदराबाद में किए अपने अध्ययन से यह निकाला था कि 'इतरीकृत' या अन्यत्व के बोध वाले धार्मिक समुदाय के प्रति रूढ़िवादी धारणाएं बच्चों के मन में कितने गहरे बसी रहती हैं। गुप्ता (2005) ने भी अपने अध्ययन से समान निष्कर्ष निकाले थे। उन्होंने पाया कि दिल्ली के सामासिक मुहल्लों में रहने वाले बहुत छोटे बच्चों ने उस धार्मिक समुदाय के बारे में गहरी नकारात्मक छाप और छवियां आत्मसात कर ली थीं जिसको वे अपने से अलग मानते थे। हम यह मान सकते हैं कि जिस तरह अपने और 'इतर' के धर्म के बारे में बच्चों को जानकारी दी जाती है उसके तौर तरीके में अलग समुदायों में अंतर हो सकता है। इस तरह के अध्ययन दिखाते हैं कि बचपन में कितनी जल्दी धार्मिक आत्म का गठन हो जाता है जिसमें 'इतरत्व' या अन्यत्व शामिल होता है। ऐसे मामले में 'इतर' या 'अन्य' में वे सभी अवगुण होने चाहिए जिनसे अपने आत्म को बचाना है। 'इतर' की अनुभूति संदेह, डर और नफरत के प्रभाव में आकार लेती है। 'इतर' जहां रहे उन जगहों से दूर रहना और उनके उपासना के स्थानों से बचना सीखना हिन्दू और मुसलमान के रूप में बड़े होने की प्रक्रिया में शामिल है (रज्जाक, 1995)। इस तरह की सीख को अनकही विरासत कहा जा सकता है। विरासत में मिली दूसरे के धर्म की अनदेखी पारस्परिक रूढ़िबद्धता को पालने की प्रवृत्ति को तीव्र कर देती है।

स्कूल में प्राथमिक समाजीकरण को बिरले ही स्वीकारा जाता है और इसलिए उसको कभी सही मायनों में चुनौती नहीं मिलती। न ही पाठ्यचर्या और न ही कक्षा का वातावरण इस तरह की चुनौती की संभावना देते हैं। इस तरह के चुनौती देने के काम की क्षमता पैदा करना शिक्षक-प्रशिक्षण का हिस्सा ही नहीं है। जब 11 की उम्र में इतिहास का शिक्षण शुरू होता है वह अक्सर पहले से मौजूद सामूहिक 'आत्म' और सामुहिक 'इतर' के गठन को और बल ही देता है। ऐसे गठन में भावनात्मक पुट भरा हुआ होता है जो परिवार के वयस्कों द्वारा निवेश किया जाता है। व्यस्कों की भूमिका को इस तरह देखा जा सकता है कि वे वंशगत ज्ञान को आगे बढ़ा रहे हैं। हम इस ज्ञान को कहानी या मिथक नाम देने के लिए भरमाया महसूस कर सकते हैं। हम उसे इतिहास की पदवी न देने में सही ही हैं लेकिन हम को यह याद रखना चाहिए कि इन सभी शैलियों का मौलिक चरित्र कथात्मक ही है। वह स्कूली इतिहास के राष्ट्रवादी कथानकों को भविष्य में सीखने के लिए ढांचे का काम करता है। यह समझने के लिए कि इतिहास की जगह क्या है अगर हम ब्रूनर (1997) द्वारा प्रस्तावित विचार की दो विधियां लेंगे तो हमारा विकल्प होगा वह विधि जो साहित्यिक वर्णन से परिभाषित होती है न कि दूसरी जो कि तर्कीय-गणित या वैज्ञानिक विचार से परिभाषित होती है।

अगर स्कूली इतिहास को विज्ञानवेत्तीय तर्क में योगदान देना है तो उसे कम से कम उस प्रतिबोधक इतिहास को स्वीकारना होगा जो बच्चे घर से लेकर आते हैं और यह साबित करने के लिए कि क्यों वह अतीत को समझने के लिए एक विश्वसनीय राह नहीं है उससे तर्कशील दृढ़ता के साथ जूझना होगा। इस तरह के शिक्षण-शास्त्रीय काम में संभावना होगी सामूहिक 'आत्म' और सामूहिक 'इतर' के बारे में प्रचलित रूढ़िबद्ध धारणाओं को कमजोर करने की जो सांस्कृतिक मनमुटाव को बढ़ावा देती हैं और राजनीतिक प्रयोजनों हेतु विचारधारात्मक समर्थन के लिए तैयार सामग्री का काम करती हैं। ◆

लेखक परिचय : जाने-माने शिक्षाविद्, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के पूर्व निदेशक और दिल्ली विश्वविद्यालय के केन्द्रीय शिक्षण संस्थान से सेवानिवृत्त।

संपर्क : anhsirk.kumar@gmail.com